नवोदय टाइम्स WED,03 DECEMBER 2025
EDITION: EDITION, PAGE NO. 8

संविधान पर चली बहस को गहराई देती एक किताब

स्वतंत्र भारत के इतिहास में शायद पहला दौर है, जब सड़क पर संविधान की चर्चा हो रही है। शुरुआत पिछले लोकसभा चुनाव प्रचार से हुई जब अहंकार में डूबे भाजपा नेताओं ने संविधान बदलने के दावे करने शुरू किए। विपक्ष ने 'संविधान खतरे में है' के नारे से पलटवार किया और उसका असर भी हुआ। राहुल गांधी ने अपने हर भाषण में संविधान की प्रति लहरानी शुरू की। उस चुनावी झटके के बाद से अब सत्तापक्ष भी संविधान के प्रति अपनी श्रद्धा का प्रदर्शन करने को आतुर है। 'आक्रमण ही रक्षा करने की सर्वश्रेष्ठ विधि है' वाले अंदाज में पिछले महीने संविधान दिवस पर प्रधानमंत्री ने देशवासियों के नाम चिट्ठी भी लिख भेजी। यानी कि संविधान पर बहस अभी जल्द खत्म होने वाली नहीं है।

लेकिन इस बहस को गहराई देने वाले विचारों की सख्त कमी है, खासतौर पर उन भाषाओं में, जो सड़क पर बोली जाती हैं। हिंदी भाषा में देखें तो अमूमन संविधान पर विशुद्ध पाठ्य पुस्तकें मिलती हैं। इस संदर्भ में तरुणाभ खेतान और सुरभि करवा की हाल ही में प्रकाशित पुस्तक 'हम भारत के लोग : भारतीय संविधान पर नौ निबंध' एक स्वागत योग्य पहल है। दो विशेषज्ञों द्वारा मूल हिंदी में लिखी गई यह छोटी और सरल किताब किसी व्यावसायिक या पेशेवर तकाजे से नहीं, बल्कि उन साधारण नागरिकों के ज्ञानवर्धन और चेतना निर्माण के लिए लिखी गई है, जिन्हें संविधान में 'हम भारत के लोग' कहा गया है।

प्रोफैसर तरुणाभ खेतान संवैधानिक कानून के जाने-माने विशेषज्ञ हैं। भेदभाव संबंधी कानून पर उनकी लेखनी को भारत ही नहीं, विदेशी कोर्ट-कचहरी में भी उद्धृत किया जाता है। पहले ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी में पढ़ाते थे, अब उस लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स में प्रोफैसर हैं, जहां संविधान निर्माता बाबासाहेब आंबेडकर ने भी शिक्षा ग्रहण की थी। उनकी सह लेखिका सुरभि करवा भी ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी से कानून की पढ़ाई करने के बाद अब ऑस्ट्रेलिया में पीएच.डी. कर रही हैं। इस पृष्ठभूमि वाले विद्वानों द्वारा हिंदी में सामान्य पाठकों के लिए किताब लिखना अपने आप में एक अनूठी घटना है।

यह काम आसान नहीं रहा होगा चूंकि इसकी कोई बनी बनाई भाषा उपलब्ध नहीं है। उस ऊबड़-खाबड़ यात्रा के चिह्न किताब की भाषा में मौजूद हैं। फिर भी इस काम को पूरा करने के लिए लेखक साधुवाद के पात्र हैं। उम्मीद करनी चाहिए कि भारतीय अकादमिक जगत के विद्वान भी उनसे कुछ सीखेंगे।

योगेन्द्र यादव

किताब का हर निबंध संविधान के एक पहलू से परिचय करवाता है : उद्देशिका, उदारवाद का दर्शन, संविधान निर्माण, विधि का शासन, लोकतंत्र, निर्वाचन व्यवस्था, नागरिकता, शक्तियों का विभाजन और संघवाद। सहज परिचय करवाते हुए यह किताब हमारी संवैधानिक व्यवस्था के बारे में अनेक मिथक तोड़ती है - मसलन यह धारणा कि भारतीय संविधान सिर्फ अंग्रेजों के 1935 वाले कानून की नकल भर है या कि सैक्युलरवाद का विचार इमरजैंसी में लादे गए संशोधन द्वारा संविधान पर आरोपित किया गया या कि लोकतंत्र का मतलब बहुमत का राज है या फिर लोकतंत्र चुनाव तक सीमित है। लेखक भारत ही नहीं, दुनिया के अनेक देशों की संवैधानिक यात्रा से वाकिफ हैं और उन उदाहरणों के जरिए इन तमाम मिथकों का खंडन करते हैं।

संविधान की व्याख्या करते हुए यह किताब संवैधानिक व्यवस्था में जरूरी कुछ सुधारों का जिक्र करने से नहीं चूकती। गवर्नर के माध्यम से राज्य सरकारों के कामकाज में दखलंदाजी के इतिहास को देखते हुए उनका सुझाव है कि इस पद को समाप्त कर दिया जाना चाहिए। भारत के लिए ब्रिटेन की संसदीय प्रणाली या अमरीका की राष्ट्रपतीय प्रणाली की बहस में हस्तक्षेप करते हुए यह किताब एक अर्ध-संसदीय व्यवस्था का सुझाव देती है, जिसमें राज्यसभा को सीधे जनता द्वारा अनुपातिक प्रतिनिधित्व की प्रणाली से चुना जाएगा, ताकि लोकसभा में बहुमत वाली पार्टी की मनमानी पर रोक लग सके।

आनुपातिक प्रणाली का सुधार करते हुए लेखक राष्ट्रपति चुनाव में इस्तेमाल की जाने वाली वरीयता आधारित मत पद्धति की वकालत करते हैं। लोकतंत्र में विपक्ष की भूमिका को मजबूत करने के लिए सुझाव है कि नेता विपक्ष के पद को संवैधानिक मान्यता दी जाए, विपक्ष को भी विधायिका का अधिवेशन बुलाने का अधिकार हो और सदन की कार्रवाई में सप्ताह के एक दिन का एजैंडा विपक्ष तय करे। राज्य की तीन शाखाओं कार्यपालिका, व्यवस्थापिका और न्यायपालिका के अलावा यह किताब एक चतुर्थ शाखा यानी स्वायत्त 'गारंटर संस्थाओं' पर बल देती है।

चुनाव आयोग, लेखपाल, लोकपाल, सूचना आयोग, मानवाधिकार आयोग जैसी संस्थाओं के महत्व को रेखांकित करते हुए लेखक याद दिलाते हैं कि अगर ये सब संस्थाएं सरकार के अंगूठे तले दबकर काम करेंगी तो संवैधानिक व्यवस्था लोकतांत्रिक नहीं हो पाएगी। उम्मीद है कि लेखक देश में चल रही राजनीतिक और लोकतांत्रिक बहसों को अपनी समझ से समृद्ध करेंगे।

भविष्य के इन मुद्दों पर सोचते हुए भी यह पुस्तक आज संविधान पर आसन्न संकट से मुंह नहीं चुराती। तात्कालिक राजनीतिक वाद-विवाद में पड़े बिना उपसंहार में लेखक बिना लाग-लपेट के लिखते हैं - 'हम एक आपातकाल से गुजर रहे हैं, एक अघोषित आपातकाल से। हालांकि संविधान को सीधे तौर पर स्थगित नहीं किया गया है, पर उसे धीरे-धीरे वैंटिलेटर पर पहुंचा दिया गया है। आज सीधे हमले के अभाव में हमसे वो भाषा ही छीन ली गई, जिससे हम आज के दौर के आपातकाल को स्पष्ट रूप से परिभाषित कर सकें, उसे पहचान सकें और उसे समाप्त कर सकें। हम एक सामूहिक भ्रम के दौर से गुजर रहे हैं, जहां हम दिन-प्रतिदिन बढ़ते गैर-लोकतंत्रवाद को साफ तौर पर देख भी नहीं पा रहे हैं, पर उम्मीद कायम है।'

इस उम्मीद को कायम रखने के लिए हमें यह संकल्प लेना होगा कि संविधान की चर्चा को सड़क पर लाने वाली और गंभीर किताबें भी भारतीय भाषाओं में लिखी जाएंगी।

yyopinion@gmail.com